दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
DSSSB TGT & PGT
ROJGAR with ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
अलंकार
LIVE
20-08-2024 05:00 PM

अलंकार लक्षण

लोक प्रसिद्ध यह अलंकार शब्द अलम् उपपदपूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर बनता है। अलंकार विषयक शास्त्र को अलंकारशास्त्र कहा जाता है। अलंकार किसे कहते है इस विषय में दण्डी ने कहा है- काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते। अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः यह वामन आनन्दवर्धन आदि ने परिभाषित किया है। मम्मटाचार्य के मत में शब्दार्थमय काव्यशरीर के सौन्दर्यवर्धक उपमादि अलंकार होते हैं।

जैसे -

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्ते अनुप्रासोपमादयः ॥

अर्थालंकार:

शब्दालंकार

कविराज विश्वनाथ साहित्यदर्पण के दशमोल्लास में अलंकार का वर्णन करते हुए कहते हैं

शब्दार्थयोरास्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्ङ्गारास्तेऽङ्गदादिवत्।।

जैसे केयूरादि शरीरशोभातिशय से आत्मा को उपकृत करते हैं। उसी प्रकार अनुप्रास, उपमादि अलंकार शब्दार्थ शोभातिशय से काव्यात्मभूत रसादि के उपकारक होते हैं। अलंकार अस्थिर होते हैं।

अतएव उनकी गुणवत् आवश्यक स्थिति है। अर्थात् गुण भी उत्कर्षक होते हैं किन्तु वे गुण रस के स्थिर धर्म स्वरूप विशेष होते हैं।

अलंकारों के प्रकार

प्रायः अलंकार दो प्रकार का होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार। कुछ की नीति में उभयालंकार भी होता है। अनुप्रास आदि शब्दालंकार और उपमारूपकादि अर्थालंकार हैं। पुनरूक्तवदाभासालंकार शब्दार्थालंकार अर्थात् उभयलंकार होता है। शब्दालंकार में शब्द की ही प्रधानता होती है और अर्थालंकार में अर्थ की प्रधानता होती है।

जो अलंकार शब्दाश्रित हैं वे शब्दालंकार कहे जाते हैं। "शब्दपरिवृत्त्यसहत्वम्" जहाँ होता है अर्थात् जो अलंकार शब्द परिवर्तन को सहन नहीं करते, प्रयुक्त शब्द के स्थान पर पर्यायवाचक शब्द के प्रयोग को नहीं सहन करते है। उस अलंकार में शब्द की सत्ता होती है। जब शब्द परिवर्तन होता है तब अलंकार भी नष्ट हो जाता है। अतः इस प्रकार की स्थिति जहाँ होती है वे शब्दालंकार होते हैं। जो अलंकार अर्थाश्रित होते हैं उनको अर्थालंकार कहते हैं।

"शब्दपरिवृत्तिसहत्वम्" जहाँ होता है अर्थात् जो अलंकार शब्द परिवर्तन को सहन करते है, प्रयुक्त शब्द के स्थान पर पर्यायवाचक शब्द के प्रयोग का सहन करते हैं। अर्थालंकार में अर्थ की सत्ता होती है। जब अर्थ परिवर्तन होता है तब ही अलंकार नष्ट नहीं होता है। अत: इस प्रकार की स्थिति जहाँ होती है वहाँ अर्थालंकार होते हैं।

शब्दार्थालंकार

कहीं पर शब्द और अर्थ दोनों का ही सन्निवेश विशेष विचित्रता से चमत्कार देखा जाता है। उन स्थलों में शब्द और अर्थ दोनों का ही चमत्कार विधान होने से शब्दार्थ या उभयालंकारता स्वीकार की जाती है। यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता होती है। शब्द को परिवर्तन समर्थ होता है। काव्य मार्ग में पुनरूक्तवदाभास नामक एक ही अलंकार देखा जाता है।

अनुप्रास

लक्षण - कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में अनुप्रास का लक्षण कहा "अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्"

अन्वयः स्वरस्य वैषम्ये अपि यत् शब्दसाम्यं सः अनुप्रासः ।

सामान्यार्थः स्वर के भेद होने पर भी सदृश व्यंजन वर्ण की आवृत्ति अनुप्रासालंकार पद से वाच्य होता है। स्वर की समानता होने पर कोई चमत्कार पैदा नहीं होता है परन्तु व्यंजन वर्ण की समानता होने पर चमत्कार होता है। अतः अनुप्रास अलंकार निर्दिष्ट है। वर्ण की या वर्णसमूह की पुनः पुनः आवृत्ति होती है तो अनुप्रास अलंकार उत्पन्न होता है। केवल ध्वनि साम्य अलंकार नहीं होता है अपितु रस, रसाभास, भाव और भावाभास के उपकारकता से शब्दसाम्य होता है तो अनुप्रासालंकार उत्पन्न होता है।

अनुप्रास के भेद - अनुप्रास पाँच प्रकार का होता है (1) छेकानुप्रास, (2) वृत्त्यानुप्रास, (3) श्रुत्यानुप्रास, (4) अन्त्यानुप्रास, (5) लाटानुप्रास।

(1) छेकानुप्रास

लक्षण - अनुप्रास अलंकार का एक भाग छेकानुप्रास होता है उसका लक्षण है- "छेको व्यंजन संघस्य सकृत्साम्यमनेकधा"

अन्वय- व्यंजन संघस्य सकृत् अनेकधा साम्यं छेकः।

सामान्यार्थ - अनेक व्यंजन वर्णों का स्वरूपत और क्रमशः एक बार सादृश्य होता है तो छेकानुप्रास अलंकार होता है। संघ बहुतो के समूह को कहते है। एक या दो वर्षों के मेल से अनुप्रास नहीं होता है जैसे 'घृतच्युतांकुर' में तकार की दो बार सादृश्य में भी छेकानुप्रास नहीं होता। छेक शब्द का सामान्य अर्थ 'रसिक' होता है। रसिकजन के ही वाक्य में यह अलंकार प्रयुक्त होता है। इसलिए इसका नाम छेकानुप्रास है।

उदाहरण - आदाय वकुल गन्धानन्धीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।
अयमेति मन्दं मन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः ॥

श्लोकार्थ - कावेरी के जल स्पर्श से पवित्र बकुल की गन्धग्राही वायु पद पर मोहग्रस्त करके मन्द-मन्द आगे बह रही है।

यहाँ गन्धान्धी में संयुक्तवर्णगन्ध की दो बार आवृत्ति हुई, कावेरीवारि में वकार एवं रकार की दो बार आवृत्ति है, पावन, पवन में पकार, वकार एवं नकार की दो बार आवृत्ति हुई। इस श्लोक में स्वरूप एवं क्रम दोनों प्रकार से आवृत्ति हुई है। अतएव छेकानुप्रास अलंकार है।

(2) वृत्त्यानुप्रास -

लक्षण - अनेकस्यैकधा साम्यम् सकृद्वाप्यनेकधा अनेकधा।
एकस्य सकृद् अप्येष वृत्त्यानुप्रास उच्यते।

शब्दार्थ - काव्य में बहुत से व्यंजनों का, एकध - केवल स्वरूप से, असकृत् - बार-बार, अनेकध = स्वरूपानुसार और क्रमानुसार से (वर्ण का पूर्वपर के क्रम से), एकस्य = एक व्यंजन का, सकृत् = एक बार, साम्यम् = समानता, वृत्त्यानुप्रासः = वृत्त्यानुप्रास अलंकार, उच्चते = कहा जाता है।

सामान्यार्थ - बहुत से व्यंजनों का स्वरूप से एक बार या अनेक बार आवृत्ति या व्यंजनों का स्वरूप से या क्रम से बार-बार आवृत्ति या एक व्यंजन की केवल एक बार आवृत्ति या एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति होती है, उसे वृत्त्यानुप्रास अलंकार कहते हैं।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूत चूताङ्कुर,
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षणं,
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैर मीवासराः ॥

श्लोकार्थ - प्रियतमा के चिन्तन में एकाग्रता के अवसर पर प्राण के समान प्रियतमा के समागम रस के आनन्द को पाने वाले पथिकों से, प्रचुरता से उत्पन्न होने वाले मकरूद के सुगन्ध से लुब्ध भौरों से प्रकम्पित आमों की मंजरियों में क्रीड़ा करने वाले कोयलों की सूक्ष्म ध्वनियों से और कोलाहलों से कानों में ज्वर उत्पन्न करने वाले वसन्त ऋतु के वे दिन बड़े ही कष्ट से बिताये जा रहे हैं। इस श्लोक में 'रसोल्लासैरभी' पद में रेफ और सकार का एक ही प्रकार से स्वरूप से साम्य है, उसी क्रम में नहीं।

अपितु पूर्व पर का भेद है। रस पद में 'र' के बाद 'स्' और सैर पद में 'स्' के बाद 'र्' है। अतएव वृत्त्यानुप्रास अलंकार है। दूसरे पाद में 'क' और 'ल' की बार-बार क्रमशः आवृत्ति हुई है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है। प्रथम पाद में वकार और धकार की बार-बार आवृत्ति हुई है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है। कथं कथम् इन पदों व्यंजनों की एक बार आवृत्ति है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है।

(3) श्रुत्यनुप्रास -

लक्षण - साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने इसका लक्षण कहा है -

उच्चार्यत्वाद्यरेकत्र स्थाने तालुरदादिके। सादृश्यं व्यञ्धनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ।।

अन्वय - तालुरदादिके एकत्र स्थाने उच्चार्यत्वात् व्यंजनस्य एव यत् सादृश्यं तत् श्रुत्यनुप्रास उच्यते।

शब्दार्थ - एकत्र = एक ही स्थान पर (उच्चारण में), तालुरदादिके = तातुदन्तादिक स्थान पर, उच्चार्यत्वात् = उच्चारित होने से, व्यंजजनस्यैव = केवल व्यंजनवर्ण की, सादृश्यम् = समानता, श्रुत्यानुप्रास = श्रुत्त्यानुप्रास नामक अलंकार, उच्यते = कहा जाता है।

सामान्यार्थ - तालुदन्तादि समान उच्चारण स्थान से उच्चारित व्यंजन वर्णों की जब समानता होती है तो वह श्रुत्यनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्तिं दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः।।

श्लोकार्थ - शिव की दृष्टिपात से कामदेव भस्मीभूत हो गया, जिसकी दृष्टि से भस्मीभूत कामदेव पुनः जीवित हो गया। उस त्रिनयनविजयिनी सुनयना रमणी की स्तुति करता हूँ। जीवयन्ति, याः, जयिनीः इत्यादि में जकार व यकार का एक से अधिक बार प्रयोग है।

दोनों वर्णों का तालु उच्चारण स्थान है। "इचुयशानां तालुं" अतएव जकार, यकार दोनों का तालु समान उच्चारण स्थान होने से श्रुत्यनुप्रास अलंकार है।

(4) अन्त्यानुप्रास -

लक्षण - साहित्यदर्पण में विश्वनाथ अन्त्यानुप्रासालंकार का लक्षण कहते है कि -

व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेणतु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥

अन्वय - यथावस्थं व्यंजनं चेत् आद्येन स्वरेण सह आवर्तते अन्त्ययोज्यत्वात् तत् अन्त्यानुप्रास उच्यते ।

सामान्यर्थः पद या पाद के अन्त में स्थित व्यंजनवर्ण, अनुस्वार या विसर्ग के साथ स्वरवर्णादि से युक्त होता हुआ रहता है। उसी प्रकार यथासंभव उस वर्ण के आदि स्थित स्वर के साथ आवृत्ति होती है तो अन्त्यानुप्रास अलंकार होता है। यह अलंकार पाद या पद के अन्त में होता है।

जैसे - केशः काशस्तबकविकासः कायः प्रकटितकरभविलासः।
चक्षुर्दग्धवराटककल्पं त्यजति नो चेत् काममनल्पम्॥

इस श्लोक के प्रथमपाद के अन्त में आसः (विकासः) है। द्वितीय पाद के अन्त में आसः (विलासः) है, तृतीय पाद के अन्त में अल्पम् (कल्पम्) और चतुर्थ पाद के अन्त में अल्पम् है। अतएव आद्यस्वर के साथ यथावस्थित व्यंजन का पुनः उच्चारण हुआ है। अतः अन्त्यानुप्रास अलंकार है। इस श्लोक में पदान्त अन्त्यानुप्रास है।

(5) लाटानुप्रास

लक्षण - कविराज विश्वनाथ ने लाटानुप्रास का लक्षण कहा है "शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः। लाटानुप्रासः इत्युक्तः॥"

अन्वयः- तात्पर्यमात्रतः भेदे शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं स लाटानुप्रासः इति उक्तः अस्ति।

सामान्यार्थ - आपात मात्र से शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति लक्षित होती है। परन्तु वाग्यार्थबोध होने पर अर्थ भेद प्रतीति होती है। वह लाटा अनुप्रास होता है। पूर्वोक्त वृत्त्यनुप्रास आदि वर्णभितिक हैं। यह लाटानुप्रास तो शब्दभित्तिकः है। शब्दगत समानता लाटानुप्रास में दिखाई देती है। यहाँ प्रथमदृष्टि से अर्थ की समानता भी दिखाई देती है। परन्तु वाक्यार्थ बोध होने पर अर्थभेद होता है।

उदा०

यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य

यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य

यमकालंकार

लक्षण - विश्वनाथ ने यमक अलंकार का लक्षण कहा-

सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यंजनसंहते: ।
क्रमेण तेनैवावृर्त्तिः यमक: विनिगद्यते ।।

अन्वय- अर्थ सति पृथगर्थाया: स्वरव्यंजन संहते: तेन क्रमेण एव आवृत्तिः यमकं विनिगद्यते ।

सामान्यार्थ - अर्थ के विद्यमान होने पर भिन्नार्थ विशिष्टता से, अर्थ के अविद्यमान होने पर निर्थकता से स्वरव्यंजन वर्णों की एक बार उच्चारण होने के बाद पूर्वक्रमानुासर से पुनः उच्चारित होता है तो यमक अलंकार होता है। इस अलंकार में कहीं-कहीं पर पदों का अर्थ होता है, कहीं पर अर्थ नहीं होता, कहीं पर एक पद अर्थवाला और दूसरा निरर्थक होता है। अतः अर्थ के होने पर प्रयुक्त होता है। इस अलंकार में कहीं एकदेशस्थित वर्णों की आवृत्ति होती है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजं ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः ॥

श्लोकार्थ - श्रीकृष्ण ने सम्मुख पुष्प समृद्ध सुरभि वसन्तकाल को देखा। इस वसन्त में पलाश वृक्ष समूह नवीन पत्रों से सुसज्जित है। विकसित कमल पराग से आकीर्ण है। रौद्र के उत्ताप से सुकुमार लता अग्रभाग दुःखी है।

इस श्लोक में पलाश और सुरभि इन दो शब्दों की आवृत्ति हुई है। भिन्नार्थकता से दो बार आवृत्ति हुई। यह प्रथम पलाश का अर्थ 'पत्र' है द्वितीय पलाश शब्द का अर्थ पलाश वृक्ष विशेष है। प्रथम सुरभि शब्द का अर्थ सुगन्ध है और द्वितीय सुरभि शब्द का अर्थ वसन्तकाल है।

इस प्रकार भिन्न अर्थ वाले पलाश और सुरभि पदों की आवृत्ति हुई है। लतान्त और पराग इन दो पदों की भी आवृत्ति हुई है। इस श्लोक में प्रथम लतान्त और द्वितीय पराग शब्द निरर्थक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

उपमालंकार

साहित्यदर्पण ग्रन्थ में विश्वनाथ ने अतिप्राचीन व अधिक प्रयोग होने से उपमा अलंकार का सर्वप्रथम वर्णन किया है।

लक्षण - साम्यं वाच्यमवैधर्क्स वाच्यैक्य उपमा द्वयो:।

अन्वय - वाक्यैक्ये द्वयोः अवैधर्म्य वाच्यं साम्यम् उपमा अलंकारः।

शब्दार्थ - वाक्यैक्ये = एक वाक्य में, द्वयोः = उपमान और उपमेय दोनों का, अवैधर्म्यम् = विरूद्धधर्मरहित, वाच्यम् = कहा जाय, साम्यम् = समानता, उपमा = उपमालंकार होता है।

सामान्यार्थ - विजातीय वस्तुओं के विरूद्ध धर्म को न कहकर यदि गुणक्रियागत समानता को इव आदि शब्द से प्रतिपादित हो, तो वह उपमालंकार होता है। साधरणतया दो वस्तुओं के मध्य साधर्म्य और वैधर्म्य सम्बन्ध होता है।

दोनों वस्तुओं के वैधर्म्य को न कहकर इव आदि शब्दों से सादृश्य को कहा जाता है। वह सादृश्य गुण और क्रियागत होता है। अर्थात् उपमान और उपमेय विजातीय वस्तुओं के मध्य कोई समानता की कल्पना की जाती है। वहाँ उपमालंकार होता है। इस प्रकार इव आदि शब्दों से समानता की स्पष्ट प्रतीति होती है। दोनों वस्तुओं के बीच विरूद्ध धर्म का उल्लेख न हो। साम्य साधरण धर्म सम्बन्ध रूप सादृश्य का नाम उपमा अलंकार है।

उपमान उपमेय से कल्पित दो पदार्थों का समान धर्म से साधर्म्य या समानता का निरूपण किया जाता है। समानता साधर्म्य गुण क्रियादिरूप होता है। उपमान उपमेय उभयगत धर्म ही सधर्म होता है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय 'चन्द्र इव मुखं सुन्दरम्' यह उदाहरण है। चन्द्र और मुख दोनों वस्तुएँ भिन्न है। सौन्दर्यत्व और आह्लादकत्व चन्द्र एवं मुख दोनों में है।

सौन्दर्यत्वादि गुण से चन्द्र और मुख की समानता कही है। इव आदि शब्द से चन्द्रमुख की सादृश्यता स्पष्ट कही है। यह लक्षण समन्वय है। अतः यह वाक्य उपमा का है।

वह उपमालंकार दो प्रकार का होता है - 1. पूर्णोपमा 2 लुप्तोपमा।

पूर्णोपमा लक्षण

सा पूर्णा यदि सामान्य धर्म औपम्यवाचि च।

उपमेयं चोपमानं भवेत् वाच्यम्।

अन्वय - यदि सामान्य धर्म औपम्यवाचिशब्द: उपमेयं उपमानं च भवेत् सा पूर्णा उपमा इति वाच्यम्।

सामान्यार्थ - जिस अलंकार में सामान्य धर्म, उपमावाचक शब्द, उपमेय और उपमान होता है वह पूर्णोपमा कहा जाता है। पूर्णोपमा के चार अंग होते हैं।

1. उपमेय, 2. उपमान, 3. साधरणधर्म, 4. सादृश्यवाचक शब्द।

उदाहरण में लक्षण समन्वय - 'कमलम् इव मुखं मनोज्ञम्' अर्थात् पद्म के समान सुन्दर मुख। यहाँ उपमेय और उपमान में मनोज्ञ धर्म समान है। इव उपमावाचक शब्द है। मुख उपमेय और कमल उपमान है। अतः चारों का वर्णन होने से पूर्वोपमा अलंकार है।

पूर्णोपमा के पुनः दो भेद है। श्रोती और आर्थी।

DSSSB TGT & PGT SCHOLAR BATCH संस्कृत

लुप्तोपमा

जहाँ उपमा वाचक घटकों (उपमान, उपमेय, उपमावाचक शब्द और साधारण धर्म) में से एक दो या तीन का उल्लेख नहीं हो तो लुप्तोपमा होता है।

लक्षण - लुप्ता सामान्यधर्मादेः एकस्य यदि वा द्वयोः। त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत् श्रोत्यार्थी ।।

सामान्यार्थ - सामान्य धर्म, उपमेय उपमान और उपमावाचक शब्द इन में से एक, दो या तीनों का अनुपादान होता है तो वह लुप्तोपमा कही जाती है। अर्थात् यदि उपमा के चार अंगों में से एक, दो या तीन अंगों का लोप हो तो वह लुप्तोपमा होती है। वह लुप्तोपमा भी दो प्रकार की होती है। 1. श्रोती और 2. आर्थी।

उदाहरण में लक्षण समन्वय- 'मुख' चन्द्र इव' इस उदाहरण में लुप्तोपमा है। क्योंकि इस में चन्द्र और मुख का सादृश्य मनोज्ञत्व के कारण ही है। दोनों में मनोज्ञत्व है। अतः मनोज्ञत्व रूप साधारण धर्म है। इस वाक्य में मुख उपमेय, चन्द्र उपमान, इव उपमा वाचक शब्द इन तीनों का उल्लेख है और साधरण धर्म का लोप है। अतः एक के लोप होने से लुप्तोपमा का उदाहरण है।

"साम्यं वाच्यमवैधर्म्य वाक्यैवउपमा द्वयोः।" इति।

एक वाक्य में दो पदार्थों के, वैधर्म्य रहित, वाक्य सादृश्य को उपमा कहते है। जिसके द्वारा सादृश्य को ग्रहण करते है वहाँ जिसका सादृश्य है वह उपमान है। मुख में सादृश्य है इसलिए मुख उपमेय होता है।

यहाँ लक्षण में वाच्यम् पद के उपादान से रूपक अलंकार का निषेध होता है। क्योंकि रूपक में साम्य व्यंग्य होता है। इसी प्रकार अवैधर्म्य पद से व्यतिरेक का निराकरण होता है। कारण है केवल व्यतिरेक में साधर्म्य के साथ वैधर्म्य भी कहा जाता है। वाक्यैक्य पद के उपादान से उपमेयोपमाया का निषेध होता है। क्योंकि उपमेयोपमाया में दो वाक्य होते है। द्वयोः पद के उपादान से अनन्वय का निषेध होता है, वहाँ एक ही साम्यकथन से।

इस अलंकार के पूर्णोपमा और लुप्तोपमा दो भेद है। जिस उपमा में उपमेय, उपमान, साधारणधर्म, और सादृश्यवाचक होते हैं वह पूर्णोपमा होती है। एवम् अंश चतुष्टय से सम्पन्न पूर्णोपमा है। पूर्णोपमा का उदाहरण है-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ इति।

यहाँ वागर्थौ उपमान, पार्वतीपरमेश्वरौ उपमेय, इव सादृश्यवाचक शब्द है, सम्पृक्तत्वरूप साधारण धर्म है अतः पूर्णोपमा है।

जिस उपमा में उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और सादृश्य वाचक चारों में से एक का, दो अथवा तीन का ग्रहण नहीं होता वह लुप्तोपमा है। यहाँ उदाहरण है

जैसे-

मुखमिन्दुयथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये।
वाचः सुधा इवोष्ठस्ते बिम्बतुल्यो मनोऽश्मवत् ॥ इति।

यहाँ यथाक्रम आनन्द, कोमल, मधुर, कठिन साधारण धर्म वाचक शब्दों के अनुपादान से लुप्तोपमा है। और वह श्रौती आर्थी के भेद से बहुत प्रकार की है। वह सब दर्पणादि में देखा जाना चाहिए।